

वैदिक साहित्य में विवेचित पर्यावरण चेतना की प्रासंगिकता

Dr. Tofique Hussain

Lecturer, Dept. of History, Govt. Girls College Sriganganagar, Jaipur, Rajasthan, India

सार

समूची सृष्टि पंचमहाभूत अर्थात् अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और आकाश से बनी है। यही पांच तत्व मिलकर समूचे विश्व ब्रह्मांड के जड़, चेतन और जीवों का निर्माण और पोषण करते हैं। यदि यह जीवनदायी तत्वों की शुद्ध और संरक्षित रहें तो जीवन भी शुद्ध और सुरक्षित रहता है। इन पांच तत्वों का सम्मिलित स्वरूप ही पर्यावरण है। पर्यावरण का संतुलन ही जीवनचक्र को नियंत्रित करता है और इसमें गतिरोध आते ही जीवन संकट में पड़ जाता है। यही कारण है कि इसकी सुरक्षा की चिंता प्राचीनकाल से होती आ रही है। वेदकालीन महर्षिगणों ने इसकी आवश्यकता एवं महत्ता को ध्यान में रखकर इसे शुद्ध एवं संरक्षित रखने हेतु नियम बना लिए थे।

परिचय

वेदों को सृष्टि विज्ञान का मुख्य ग्रंथ माना गया है। इनमें सृष्टि के जीवनदायी तत्वों की विशेषताओं का काफी सूक्ष्म व विस्तृत विवरण है। ऋग्वेद में अग्नि के रूप, रूपांतर और उसके गुणों की व्याख्या की गई है। यजुर्वेद में वायु के गुणों, कार्य और उसके विभिन्न रूपों का आख्यान मिलता है। अथर्ववेद में पृथ्वीतत्व का वर्णन हुआ है। वैदिक महर्षियों ने इन प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना। इसीलिए उन दिनों जड़-चेतन, सभी रूपों की उपासना व अभ्यर्चना की जाती थी और इसीलिए वैदिक युग में समस्त सृष्टि में सुख-शांति व समृद्धि का वातावरण था।[1,2]

यजुर्वेद का अध्ययन इस तथ्य का संकेत करता है कि उसके शांति पाठ में पर्यावरण के सभी तत्वों को शांत और संतुलित बनाए रखने का उत्कट भाव है, वहीं इसका तात्पर्य है कि समूचे विश्व का पर्यावरण संतुलित और परिष्कृत हो। इसमें उल्लेख है कि द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक-अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें। अदृश्य आकाश पृथ्वी एवं उसके सभी घटक, जल, औषधियां, वनस्पतियां व संपूर्ण संसाधन एवं ज्ञान शांत रहें। पर्यावरण के प्रति इतना गहन एवं सूक्ष्म ज्ञान का दिग्दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है।

ऋग्वेद में वायु के औषधीय महत्त्व को स्वीकारा गया है। ऋग्वेद की ऋचा कहती है-हे वायु! अपनी औषधि ले आओ और यहां से सब दोष दूर करो, क्योंकि तुम ही सभी औषधियों से भरपूर हो। ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र जल की शुद्धता का वर्णन करते हुए कहता है, आओ सभी मिल कर प्रवाहित जल के प्रशंसा के गीत गाएं जो हजारों धाराओं से स्फटिक की तरह बहकर आंखों को आनंद देता है। उपनिषद्कारों ने ऊर्जा के अपरिमित स्रोत सूर्य को जगत् की आत्मा कहकर उसकी अभ्यर्चना की है, सूर्य को प्राण की संज्ञा दी है। यज्ञों के माध्यम से वायुमंडल को शुद्ध करना भी वेदों का विषय रहा है। वैदिककाल में पर्यावरण के परिष्कार के लिए यज्ञ-हवन संपन्न किए जाते थे।[3,4]

सामवेद में जीवन की मंगलकामना और प्रकृति की अविरल उपासना के भाव वर्णित हैं। इसमें वनस्पतियों और पशुजगत तथा औषधि विज्ञान के सुंदर मंत्रों के उद्धरण हैं। सामवेद कहता है – हे इंद्र, सूर्य रश्मियों और वायु से हमारे लिए औषधि की उत्पत्ति करो। हे सोम, आपने ही औषधियों, जलों और पशुओं को उत्पन्न किया है। अथर्ववेद में भी पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन संबंधी चिंतन का गौरवगान हुआ है। पृथ्वी सूक्त में अथर्वण ऋषि धरा की महानता, उदारता, सर्वव्यापकता आदि अनंत गुणों पर विस्मित हो कह उठते हैं, हे माता! आपके लिए ईश्वर ने शीत, वर्षा तथा वसंत ऋतुएं बनाई हैं। दिन-रात के चक्र स्थापित किए हैं। इस कृपा के लिए हम ईश्वर के आभारी हैं। वे खनन से पूर्व धरती माता से प्रार्थना करते हैं कि हे मां, जीविकोपार्जन के लिए हम ऐसा करने को बाध्य हैं, किन्तु हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह तुम्हें पुनः हरा-भरा कर दे। हम भूमि के जिस स्थान पर खनन करें, वहां शीघ्र ही हरियाली छा जाए। आपसे प्रार्थना है कि ऐसी सद्बुद्धि दें जिससे हम आपके हृदय स्थल को न तो आहत करें, और न ही आपको दुःख पहुंचाएं। व्यक्ति स्वस्थ, सुखी दीर्घायु रहे, नीति पर चले और पशु

वनस्पति एवं जगत् के साथ साहचर्य रखे, यही वैदिक साहित्य की विशेषता है।[5,6] वैदिक कर्मकांडों की अनेक विधाओं ने भी पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा का दायित्व निभाया है। अरण्यों में रहकर पर्यावरण के प्रति विशेष जागरूक रहने वाले ऋषियों ने आरण्यक साहित्य का सृजन कर विश्व में पर्यावरण के महत्व को रेखांकित किया है। आरण्यक ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों के बीच की कड़ी हैं। 'अरण्ये भवमेति आरण्यकम्' कहकर आरण्यक का अर्थ स्पष्ट किया गया है। बृहदारण्यक भी 'अरण्येनूत्यमानत्वात् अरण्यकम्' के रूप में इसका समर्थन करता है। इसका विषय प्राणविद्या है। अंतरिक्ष और वायु से प्राण का संबंध अन्योन्याश्रित है। पर्यावरण के जैविक और अजैविक तत्वों में भी वायु और अंतरिक्ष का विशेष योगदान रहता है। सृष्टि के सभी तत्वों में इन दोनों का समावेश है। इन्हीं गुणों के कारण सृष्टि के सभी तत्वों को प्राणशक्ति मिलती है जिससे विकास की गति अग्रसर होती है।

उपनिषदों में जल, वायु, पृथ्वी और अंतरिक्ष का विशद वर्णन हुआ है। इसमें प्रकृति की महत्ता को पर्याप्त मान्यता प्रदान की गई है। इनके अनुसार पदार्थ की उत्पत्ति एवं जीव-जगत् की सृष्टि अग्नि जल और पृथ्वी के विनियोग से हुई है। श्वेताश्वतर उपनिषद् ने इस त्रिगुणात्मक प्रकृति की विवेचना की है। छांदोग्य उपनिषद् स्पष्ट करता है कि सात्विक ओर से परिष्कृत में का सीधा संबंध है। इसमें आगे और स्पष्ट करते हुए उल्लेख है कि पृथ्वी, जल और पुरुष सभी प्रकृति के घटक हैं। पृथ्वी का रस जल है और जल का रस औषध है। औषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाणी, वाणी का ऋचा, ऋचा का साम और साम का रस उद्गीथ हैं, अर्थात् पृथ्वी तत्व में ही सब तत्वों को प्राणवान बनाने के प्रमुख कारण है।[7,8] रामायणकाल में भी पर्यावरण चेतना पर्याप्त सक्रिय थी। वाल्मीकि रामायण में राम के वन गमन के समय प्रकृति के मनोरम दृश्य का उल्लेख किया गया है-इस समय पर्वत प्रदेश, घने-जंगल एवं रम्य नदियों के किनारे सारस और चक्रवाक पक्षी आनंद में विचर रहे थे। सुंदर जलाशय में कमल दल खिले हुए थे। जंगलों में झुंड के झुंड हिरन, गैंडे वाराह और हाथी निर्भय घूम रहे थे अर्थात् उन दिनों पर्यावरण अत्यंत समृद्ध था। इस काल का चित्रण करने वाले महाकवि भवभूति ने भी प्रकृति का अत्यंत हृदयग्राही चित्रण करते हुए लिखा है कि वनों में सिद्ध तपस्वियों के आश्रम हरियाली से भरापूर थे। वहां स्वच्छंद विचरण करते हिरण शावक इन प्राकृतिक आवासों की शोभा बहुगुणित कर देते थे। रामायण कालीन ग्रंथों में प्रकृति को सजीव व निर्जीव दोनों ही तत्वों से चेतना संपन्न बताया गया है। रामचरितमानस के उत्तरकांड में वर्णन मिलता है कि चरागाह तालाब, हरित भूमि, वन उपवन के सभी जीव आनंद पूर्वक रहते थे।[9,10]

इसी तरह महाभारतकालीन मनीषियों ने भी पर्यावरण की गौरव गरिमा को महिमा मंडित किया है। इस काल में भगवान् कृष्ण द्वारा गाई गीता में प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण बताया गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं, प्रकृति के कण-कण में सृष्टि का रचयिता समाया हुआ है। प्रकृति के समस्त चमत्कारों को परमेश्वर का स्वरूप बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके सभी भूत-प्राणियों को धारण करता हूँ। चंद्रमा बनकर औषधियों का पोषण करता हूँ। महाभारतकाल में प्रत्येक तत्व को देवता सदृश स्वीकार कर उनकी अभ्यर्थना की जाती थी। उन दिनों वृक्षों की पूजा का प्रचलन था। वृक्षों को काटना महापाप समझा जाता था। महाभारत के आदिपर्व में वर्णन है कि गाँव में जो जगह पेड़ फूल और फलों से भरपूर हो वह स्थान हर तरह से अर्चनीय है। इसमें प्रकृति का अनेक उपमाओं से अलंकृत किया गया है। पवित्र और शीतल जलाशय तथा जंगल पहाड़ व पर्वतों आदि को प्रकृति व पर्यावरण के अद्भुत प्रसंगों से महाभारत के सभी पर्व भरे पड़े हैं। महाकवि कालिदास ने भी अपने नाटकों एवं काव्यों में पशु-पक्षी वृक्षादि से मानवीय जीवन का अपूर्व संबंध स्थापित किया है। अभिज्ञान शाकुंतलम् ने तो इन रिश्तों व संबंधों को सजीव कर दिया है। कण्व आश्रम में पत्नी बद्धी शकुंतला अपने चारों ओर के परिवेश एवं वातावरण से इतना एकात्म एवं तदाकार हो गई थी कि उसका विछोह सभी को विह्वल कर रहा था। उसकी विदाई के समय पशु पक्षी ही नहीं वनस्पति जगत् भी उदास हो गया था।[11]

वैदिक वांग्मय में दर्शन भी पर्यावरण की चिंतन चेतना से ओतप्रोत रहे हैं। सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष के समन्वय को सृष्टि का कारण माना है। प्रकृति जड़ एवं स्थूल होते हुए भी अति सूक्ष्म है। अतः प्रकृति समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है। चूंकि प्रकृति को यहां सूक्ष्मातिसूक्ष्म दर्शाया है, इसलिए इसमें पर्यावरण अनायास ही जीवंत हो उठा है। न्यायदर्शन में ईश्वर एवं जीव के साथ प्रकृति भी महत्वपूर्ण घटक है।

विचार-विमर्श

वैदिक एवं दार्शनिक साहित्य की ही भाँति पुराणों में भी पर्यावरण के घटकों को पूजनीय माना गया है। प्रकृति के इन घटकों में देवत्व का भाव भी दर्शाया गया है। यहां मिट्टी प्रस्तर के पहाड़ को देवात्मा हिमालय बताया है तो नदियों को देवी का पर्याय माना है, जिसमें पुण्यतोया गंगा का स्वरूप तो अवर्णनीय है। पुराणों के अनुसार ईश्वर संसार के कल्याणार्थ कभी मत्स्य का

आकार ग्रहण करते हैं तो कभी कछुआ, हंस बनकर इनकी महत्ता प्रतिपादित करते हैं। सिंह और वाराह के रूप में आकर सभी जीवों की श्रेष्ठता घोषित करते हैं। इसी लिए भारतीय संस्कृति में सभी जड़-चेतन का दिव्य माना है। पुराणों की रचना का आधार भी सृष्टि के तत्वों को लेकर बना है। अनेक पुराणों का नामकरण भी इन तत्वों के नामों को लेकर हुआ है। अग्निपुराण, वायुपुराण आदि में यही भाव दिखाई देता है। इन सभी पुराणों में दिव्य प्रकृति का सहज वास है। [12,13] ब्रह्मपुराण में गंगाजल की विशेषता खासतौर पर परिलक्षित होती है। वृक्ष मानवमात्र के लिए सतत् प्राणदायक वायु का संचार करते हैं। यही वजह है कि भारतीय ऋषियों महर्षियों ने वृक्षों के प्रति अगाध अनुराग भावना प्रदर्शित की है। यहां पर वृक्ष पूजा का प्रचलन अति प्राचीन है। देवदार को देवताओं का प्रिय वृक्ष कहा जाता है। तुलसी को वायु के शोधन एवं पवित्रता के लिए हर आंगन में रोपने की प्रथा है। पौराणिक मान्यता के अनुरूप ही अपने यहां पीपल, पलाश, नीम, अशोक, बरगद, कदंब, आंवला आदि अनेक वृक्षों को देवता के सदृश पूजा जाता है। प्राचीनकाल में तो वृक्षों के साथ वनों की भी पूजा होती थी। इसीलिए मधुवन, वृहदवन, बहुलवन, कुमुदवन, श्रीवन, नंदनवन आदि वनों का वर्णन मिलता है। इन सभी उपक्रमों एवं प्रयासों के पीछे पर्यावरण को संरक्षित करने की विशेषता ही झलकती है।

पुराणों का समय वेदकाल से प्रारम्भ होकर सोलहवीं शताब्दी के अंतिम कालखंड तक माना गया है। इतनी लंबी अवधि में भी पर्यावरण के प्रति पर्याप्त सजगता एवं जागरूकता का रुझान मिलता है। इसके अलावा इतिहास के पृष्ठों में दबे तमाम तथ्यों का उभारने पर पता चलता है कि इन दिनों भी पर्यावरण को कानूनी संरक्षण प्राप्त था। सिंधु सभ्यता के युग में द्रविड़ों की जीवनशैली ने पर्यावरण प्रेम को दर्शाया है। वे विशेष रूप से वृक्ष पूजा करते थे। द्रविड़ों के द्वारा प्रारम्भ की गई यह प्रक्रिया एवं परंपरा बाद में भी जीवित रही। चंद्रगुप्त मौर्य के समय वन की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अभ्यारण्यों की पांच श्रेणियां होती थी। सम्राट अशोक के शासनकाल में सर्वप्रथम वन्य जीवों के संरक्षण हेतु नियम बनाए गए थे। इसके पश्चात् भी यह सिलसिला चलता रहा। [14,15]

पर्यावरण संरक्षण की इस सुदीर्घ एवं अतिप्राचीन परंपरा को आधुनिकता की आग ने भारी नुकसान पहुंचाया है। दोहन और शोषण, वैभव एवं विलास की रीति नीति से पर्यावरण को संकट में डाल दिया है, फलतः जीवन भी संकटग्रस्त है, सब ओर विपन्नता है, प्राकृतिक आपदाओं का क्रूर तांडव है। वैज्ञानिक हो या राजनेता, सभी प्रकृति के क्रोधवेश से डरे-सहमे हैं। समाधान की खोज के इन पलों में सार्थक निदान के लिए जरूरी है कि हम अपनी विरासत को संभालें। पर्यावरण संरक्षण की टूट-बिखर रही कड़ियों को पुनः जोड़े। हममें से प्रत्येक मन-वाणी-कर्म से इस सत्य का वेदकालीन महर्षियों के स्वर-में-स्वर मिलाकर सस्वर उद्घोष करें-ॐ द्यौः शांतिः अंतरिक्ष शांतिः पृथ्वी शांतिः आपः शांतिः। जब हम अपने आचरण व्यवहार से माता प्रकृति के कोप को शांत करेंगे, तभी हमारा अपना जीवन भी शांत और सुखी होगा।

परिणाम

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। यह उन संपूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग है, जो मानव जगत को परावृत्त करती हैं तथा उनके क्रियाकलापों को अनुशासित करती हैं। हमारे चारों ओर जो विराट प्राकृतिक परिवेश व्याप्त है, उसे ही हम पर्यावरण कहते हैं। परस्परालंबी संबंध का नाम पर्यावरण है। हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएं परिस्थितियां एवं शक्तियां विद्यमान हैं, वे सब हमारे क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक दायरा सुनिश्चित करती हैं। इसी दायरे को हम पर्यावरण कहते हैं। यह दायरा व्यक्ति, गांव, नगर, प्रदेश, महाद्वीप, विश्व अथवा संपूर्ण सौरमंडल या ब्रह्मांड हो सकता है। इसीलिए वेदकालीन मनीषियों ने द्युलोक से लेकर व्यक्ति तक, समस्त परिवेश के लिए शांति की प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना करता है, 'द्यौः शांतिरंतरिक्षं...' (शुक्ल यजुर्वेद, 36/17)। इसलिए वैदिक काल से आज तक चिंतकों और मनीषियों द्वारा समय-समय पर पर्यावरण के प्रति अपनी चिंता को अभिव्यक्त कर मानव-जाति को सचेष्ट करने के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया गया है। [16]

इस प्रकार द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक और अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहें, अदृश्य आकाश (द्युलोक), नक्षत्रयुक्त दृश्य आकाश (अंतरिक्ष), पृथ्वी एवं उसके सभी घटक-जल, औषधियां, वनस्पतियां, संपूर्ण संसाधन (देव) एवं ज्ञान-संतुलन की अवस्था में रहें, तभी व्यक्ति और विश्व, शांत एवं संतुलन में रह सकता है। प्रकृति ने हमें जो कुछ भी परिलक्षित होता है, सभी सम्मिलित रूप में पर्यावरण की रचना करते हैं। जैसे-जल, वायु, मृदा, पादप और प्राणी आदि। अर्थात् जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक और जीवीय परिस्थितियों का योग पर्यावरण है। इसलिए विद्वानों का मत है कि प्रकृति ही मानव का पर्यावरण है और यही उसके संसाधनों का भंडार है।

वैदिक ऋषियों ने उन समस्त उपकारक तत्वों को देव कहकर उनके महत्व को प्रतिपादित तो किया ही है, साथ ही मनुष्य के जीवन में उनके पर्यावरणीय महत्व को भी भली-भांति स्वीकार किया है। इन देवताओं के लिए मनुष्य का जीवन ऋणी हो गया और शास्त्रीय कल्पनाओं ने मनुष्य को पितृऋण और ऋषिऋण के साथ-साथ देवऋण से भी उन्मुक्त होने की ओर संकेत किया है। वह अपने कर्तव्य में देवऋण से मुक्त होने के लिए भी कर्तव्य करें। ऋषियों ने उसके लिए यह मर्यादा स्थापित की है। पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए जिन देवताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है उनमें – सूर्य, वायु, वरुण (जल) एवं अग्नि देवताओं से रक्षा की कामना की गई है। ऋग्वेद (1/158/1, 7/35/11) तथा अथर्ववेद (10/9/12) में दिव्य, पार्थिव और जलीय देवों से कल्याण की कामना स्पष्ट रूप से उल्लिखित है।[15,16]

आज पर्यावरण शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है, अब से तीन-चार दशक पूर्व उसका ऐसा कोई पारिभाषिक अर्थ नहीं था। प्राचीन कोशों में और यहां तक कि संस्कृत हिंदी कोशों में भी यह शब्द उपलब्ध नहीं होता। उसके पीछे मूल कारण यही है कि यह शब्द उस समय तक किसी पारिभाषिक रूप से प्रचलित नहीं हो पाया था। अतएव प्राचीन कोशकारों ने इसका कोई विशेष अर्थ प्रस्तुत नहीं किया। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति, परि-उपसर्ग के साथ आवरण शब्द की संधि से होती है। इसके साथ ही आङ्पूर्वक वरण शब्द का प्रयोग भी संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ ग्रंथ में हमें प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है, 'ढकना, छिपाना, घेरना, ढक्कन, पर्दा, घेरा, चारदीवारी, वस्त्र, कपड़ा और ढाल (वही, पृ. 200)। इसी ग्रंथ में संस्कृत के उपसर्ग 'परि' का अर्थ-सर्वतोभाव, अच्छी तरह, चारों ओर तथा आच्छादन आदि के रूप में मिलता है और 'आङ्' भी संस्कृत का एक उपसर्ग है, जिसका अर्थ, 'समीप, सम्मुख और चारों ओर से होता है (वही, वृ. 170)। वरण शब्द संस्कृत के 'वृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ, 'छिपना, चुनना, ढकना, लपेटना, घेरना, बचाना आदि है (वही, पृ. 1056)। इसी प्रकार पर्यावरण – परि+आवरण से बने शब्द का अर्थ, 'चारों ओर से ढकना, चारों ओर से घेरना या चारों ओर का घेरा' होगा। अतएव वैज्ञानिक कोशकारों ने इसका अर्थ, 'पास पड़ोस की परिस्थितियां और उनका प्रभाव' के रूप में माना है।

सर्वप्रथम डॉ. रघुवीर ने तकनीकी शब्द कोष निर्माण के समय 'इन्वायरमेंट' (फ्रेंच भौतिक शब्द) के लिए 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग किया है। वे ही इसके प्रथम 'शब्द प्रयोक्ता' हैं (कंप्रिहेंसिव इंग्लिश-हिंदी डिक्शनरी, डॉ. रघुवीर, पृ. 589)। वास्तव में पर्यावरण या इन्वायरमेंट शब्द अत्यधिक प्राचीन शब्द नहीं है। जर्मन जीव वैज्ञानिक अर्नेस्ट हीकल द्वारा 'इकोलाजी' शब्द का प्रयोग सन् 1869 में किया गया, जो ग्रीक भाषा के ओइकोस (गृह या वासस्थान) शब्द से उद्धृत है। यही शब्द पारिस्थितिकी के अंग्रेजी पर्याय के रूप में इन्वायरमेंट शब्द से प्रचलित हुआ है। (पर्यावरण तथा प्रदूषण, अरुण रघुवंशी, पृष्ठ 41)। इन्वायरमेंट शब्द का प्रयोग, ऐसी क्रिया जो घेरने के भाव को सूचित करे, के संदर्भ में किया जाता है। विभिन्न कोशों में इसके विभिन्न अर्थ दिए गए हैं। जैसे-वातावरण, उपाधि, परिसर, परिस्थिति, प्रभाव, प्रतिवेश, परिवर्त, तथा वायुमंडल, वातावरण और परिवेश, अड़ोस-पड़ोस, इर्द-गिर्द, आस-पास की वस्तुएं एवं पर्यावरण आदि।

आधुनिक चिंतन में पर्यावरण के दो भेदों का ही वर्णन मिलता है। वे हैं-

1. भौतिक या प्राकृतिक पर्यावरण-इसके अंतर्गत वे तत्व सम्मिलित होते हैं, जो जैवमंडल का निर्माण करते हैं।
2. सांस्कृतिक या मानवकृत पर्यावरण इसमें आर्थिक क्रियाएं, धर्म अधिवास, आवासीय दशाएं एवं राजनीतिक परिस्थितियां आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह तथ्य वैदिक और आधुनिक चिंतन से स्वयं स्पष्ट होता है कि प्राणि-जगत् को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय तत्व 'देव' केवल पार्थिव ही नहीं हैं, अपितु उनका स्थान अंतरिक्ष और द्युलोक भी है। वैदिक ऋषियों ने उन सभी से प्राणियों की मंगल-कामना एवं सुरक्षा चाही है।[17]

पर्यावरण को जानने के लिए अब यह जानना भी आवश्यक है कि पर्यावरण का निर्माण करने वाले समस्त तत्वों की सृष्टि किस क्रम में और किस प्रकार हुई और उसके कारक तत्व कौन से हैं, तभी पर्यावरण के समस्त रहस्यों से आवरण दूर किया जा सकता है। वैदिक ऋषियों ने ही सर्वप्रथम पर्यावरण पर चिंतन-मनन करते हुए, सृष्टि को प्रारंभिक अवस्था में जिस रूप में देखा, उसका वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं 'नासदासीत्रो सदासीत्तदानी...' (ऋग्वेद, 10/129, 1-7) में उपलब्ध होता है। जहां ऋषि कहते हैं कि सृष्टि के आरंभ में न सत् था न असत् फिर ब्राह्मण ग्रंथों (पृ. 158) में भी पुनः शंका उठाई गई कि कौन जानता है यह सब? और कौन उसका वर्णन ही कर सकता है? किंतु इसके समाधान के लिए ऋग्वेद संहिता में मंत्र है, 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे...' (ऋग्वेद, 10/121/1) जिसमें सृष्टि के विकास-क्रम को बताया गया है कि सर्वप्रथम जीवों का स्वामीभूत हिरण्यगर्भ अस्तित्व में आया और उसी से सृष्टि का अविच्छिन्न विकास हुआ आदि-आदि। विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान रहती है-कण, प्रतिकण एवं विकिरण। चाहे वह सृष्टि

उत्पत्ति का समय हो या अन्य कोई समय। वैदिक सिद्धांत के अनुसार प्रकृति में मूल तीन वर्ग, 'त्रयः कृण्वति भुवनस्य रेत' (ऋग्वेद, 7/33/7) विद्यमान हैं। ये हैं वरुण, मित्र और अर्यमा। इनकी संयुक्त सत्ता को अदिति कहा गया है, जो अनादि एवं अखंड सत्ता है। व्यक्तिगत रूप से ये आदित्य कहलाते हैं। ये अनादि शाश्वत सत्ता के अंगभूत हैं। अर्यमा उदासीन कण है, जो विज्ञान की विकिरण के फोटॉन के अनुरूप है। वरुण और मित्र प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं तथा विज्ञान के कण-प्रतिकण का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा वे विपरीत आवेश (चार्ज वहन करते हैं)। वैदिक परिकल्पनानुसार सृष्टिकाल से दृश्य जगत तक भौतिक पदार्थ पांच अवस्थाओं में निष्क्रमण करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि में महा-अग्निकांड (बिग बैंग) के बाद की अवस्थाएं क्रमशः इस प्रकार हैं-

1. आपः (क्रियाशील) अवस्था-कांटम या क्वार्कसूप (शपथ ब्राह्मण, 1/1/1)
2. बृहती आपः -प्लाज्मा अवस्था (ऋग्वेद, 10/12/7)
3. अपानपात-नाभिक अवस्था या कॉस्मिक मैटर (ऋग्वेद, 1/35/2)
4. अर्ध गर्भः -परमाणु अवस्था (ऋग्वेद, 1/164/36)
5. पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) का दृश्य जगत् [16,17]

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों में -तैत्तिरीय ब्राह्मण (2, 8, 9, 6 तथा 1, 1, 3, 1), गोपथ ब्राह्मण (1, 1, 1, 2), सामविधान ब्राह्मण 1/1), जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण (7, 1, 1), शतपथ ब्राह्मण (6, 1, 1, 13, 19, 2, 2, 3, 28), जैमिनीय ब्राह्मण (1, 68 तथा 2, 146, ऐतरेय ब्राह्मण (5, 5, 7), तांड्य ब्राह्मण (4,1, 1), तैत्तिरीय संहिता (4, 1, 8, 3), ऐतरेये उपनिषद् (1, 1), तैत्तिरीय उपनिषद् (2, 7, 10) आदि में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन है, जो वेदों की विषद् व्याख्या रूप हैं और उन अर्थों का पूरक भी है। इसी क्रम में दार्शनिकों एवं वेदांत ने भी उसी प्रकार चिंतन किया है। पौराणिक दृष्टि तथा मनु का सृष्टि सिद्धांत व आयुर्वेद का चिंतन भी वैदिक विज्ञान का समर्थन करता हुआ ही प्रतीत होता है।

वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति और जगत् का विकास ही पर्यावरण प्रादुर्भाव है। सृष्टि का जो प्रयोजन है वही पर्यावरण का भी है। जीवन और पर्यावरण का अन्योन्य संबंध है। इसीलिए आदिकाल से मानव पर्यावरण के प्रति जागरूक रहा है, ताकि मानव दीर्घायुष्य, सुस्वास्थ्य, जीवन-शक्ति, पशु, कीर्ति, धन एवं विज्ञान को उपलब्ध हो सके। यही कामना अथर्ववेद का ऋषि, 'आयुः प्राणं प्रजां पशुं' (अथर्ववेद, 19, 71, 1) व 'शत जीव शरदो' ...अथर्ववेद, 3, 11, 4) करता है और ऋग्वेद में ऋषि, 'शतां जीवतु शरदः...' (ऋग्वेद 10/18/4) तथा यजुर्वेद में ऋषि, 'शतिमिन्नु शरदो अंति...' (यजुर्वेद, 25/22) तथा वह ऋषि का आशीर्वाद पाता है कि हे मनुष्य! बढ़ता हुआ तू सौ शरद ऋतु और सौ बसंत तक जीवित रहे। इंद्र (विद्युत्), अग्नि, सविता (सूर्य), बृहस्पति (संकल्पशक्ति) और हवन (यज्ञ) तुझे सौ वर्ष तक आयुष्य प्रदान करें (अथर्ववेद)।

इतना ही नहीं कि किसी भी तरह सौ वर्ष जिएं, प्रत्युत, आरोग्यता और बल के साथ जिएं। हम सौ वर्ष पर्यंत, ज्ञानशक्ति का विकास करें, सौ वर्ष तक जीवन को ज्ञान के अनुकूल विकसित करें, सौ वर्ष तक वेद को सुनें और प्रवचन करें और आयु भर किसी के पराधीन न रहें (ऋग्वेद, 7/66/16)। संतान और धन के साथ अभ्युदय को हम प्राप्त होते हुए बाहर से शुद्ध, अंदर से पवित्र तथा निरंतर यज्ञ करने वाले हों। नृत्य, हास्य, सरलता और कल्याणमय श्रेष्ठ मार्ग के आचरण से आयु बढ़ती है (ऋग्वेद 10/18/2 तथा 10/18/3)। दीर्घायु प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम अपने मन में श्रेष्ठ सद्गुण बढ़ाते हुए राष्ट्रीयता तथा क्षात्रतेज अपने अंदर बढ़ाना चाहिए। प्राणशक्ति के साथ आत्मिक बल धारण करने वाले मृत्यु के वश में नहीं जाते (अथर्ववेद 10/3/12 तथा 19/27/8)। इसलिए वेद की उपर्युक्त शाश्वत भावना के अनुरूप ही पर्यावरण शुद्धि एवं सुस्वास्थ्य मानव की एक बड़ी आवश्यकता है। [13,14]

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है। इस पर आचार्य सायण एवं नैरुक्त चिंतन है कि अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है एवं प्राप्ति का संरक्षण क्षेम है (ऋग्वेद, 5/51/11)। अतएव सहज-सुलभ प्राकृतिक पदार्थों का सुरक्षित रहना स्वस्ति है। इस प्रकार पर्यावरण को सुरक्षित रखने की उदात्त भावनाएं हमें अनेक स्थलों पर देखने को मिलती हैं (ऋग्वेद, 5/51/11, 5/51/13, 5/51/14 तथा 10/7/1)।

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदार्थों का परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की भावनाएं अनेक स्थलों पर हमें उपलब्ध होती हैं। जैसे-पृथ्वी हमारे लिए कंटकरहित और उत्तम बसने योग्य हो (ऋग्वेद, 7/35/3 तथा यजुर्वेद 36/13)। हमारे दर्शन के लिए अंतरिक्ष शांतिप्रद हो (ऋग्वेद, 10/35/5)। वह आकाश जिसमें बहुत पदार्थ रखे जाते हैं, हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 7/35/2)। सूर्य, अपने विस्तीर्ण तेज के साथ हमारे लिए सुख करने वाला हो (ऋग्वेद, 10/35/8)। सूर्य, हमारे लिए सुखकारी तपे (यजुर्वेद, 36/10), चंद्रमा हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/7)। नदी, समुद्र और जल हमारे लिए सुखप्रद हो (ऋग्वेद, 7/35/8)। पीने का जल और वर्षा का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/12)। जलधाराएं तुम्हारे लिए अमृत वस्तुएं बरसाएं (अथर्ववेद, 8/6/5)। ज्योतिर्मय अग्नि हम लोगों के लिए सुखरूप हो (ऋग्वेद, 7/35/4)। अग्नि दुःखदायक रोगादि को और अनावृष्टि आदि दुःखों का हनन करती है (सामवेद मंत्र-4)।[15]

निष्कर्ष

इसी प्रकार अन्य पर्यावरणीय घटकों के लिए शुभकामनाएं की गई हैं। जैसे- शीघ्र चलने वाली वायु हम लोगों के लिए सब ओर से सुखरूप होकर बहे (ऋग्वेद, 7/35/4)। पवन हमारे लिए सुखकारी चले (यजुर्वेद, 36/10)। पूर्व आदि चारों दिशाएं व विदिशाएं हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/8)। समस्त दिशाएं हमें मित्रवत सुख दें (अथर्ववेद, 19/15/16)। विशेष दीप्ति वाली उष्माएं हमारा कल्याण करें (ऋग्वेद 7/35/10)। दिन और रात्रि हमारे लिए सुखकारी हो (यजुर्वेद 36/11)। हम दिन और रात में अभय रहें (अथर्ववेद, 19/15/16)। मेघ हम प्रजाजनों के लिए शांतिप्रद हों (ऋग्वेद, 7/35/10)। बिजली और गरज के साथ शब्द करते हुए पर्जन्य (मेघ) देव की वर्षा कल्याणकारी हो (यजुर्वेद, 36/10), आज वैज्ञानिकों ने भी मौसम में बदलाव को नियंत्रित करने में बादलों की भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है (टेक्सास ए एंड एम यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर शाइमा नसीरी, नवभारत, 4 जनवरी, 2011 के रायपुर संस्करण के पृष्ठ 5 पर)। उन्होंने शोध कर कहा कि मध्य स्तर के बादल छोटी बूंदों और बर्फ के कणों का निर्माण करते हैं। उन्होंने इस प्रकार के अध्ययन में नई सेटेलाइट टेक्नोलॉजी को वैज्ञानिक रहस्य उजागर करने में बहुत कारगर एवं सहयोगी बताया। नासा ने इस अध्ययन के लिए प्रो. शाइमी को न केवल सम्मानित किया, अपितु उन्हें भू-व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए 3 लाख 24 हजार डॉलर का तीन वर्ष के लिए अनुदान भी दिया।[16]

इसी तारतम्य में वैदिक ऋषियों ने पर्वतों, वृक्षों, वनस्पतियों एवं पशुओं को प्रजाजनों के लिए सुख स्वरूप होने की कामना की है। उदाहरणार्थ-हमारी शांति के लिए पर्वत निश्चल हों (ऋग्वेद 7/35/3 एवं 8), वनों के वृक्ष हमारे लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/5), हमारे लिए औषधियां शांतिकारक हों (यजुर्वेद, 36/17), घोड़े और गायें हम लोगों के लिए सुखरूप हों (ऋग्वेद, 7/35/12)। इस प्रकार पर्यावरण के हर घट के शांत एवं सौम्य रहने पर ही विश्व-शांति का स्वप्न साकार होने की कामना वैदिक ऋषियों ने की है। उन्होंने एक संपूर्ण वैचारिक जगत् के साथ-साथ सांस्कृतिक जगत् पर भी अत्यंत गहराई से विचार कर पर्यावरण के दायरे को विराटता प्रदान की है और प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा की कामना के साथ-साथ मार्थुय की उदात्त भावना तथा अभय की प्रार्थना भी की है। जहां-जहां हमारे लिए जैसी परिस्थिति हों, वहां-वहां हमें हर प्रकार से अभय प्राप्त हो तथा प्रजा एवं पशुओं से भी हमें अभय मिले (यजुर्वेद, 37/12)। संसार में वायु मधुर होकर चले, नदियां मधुर होकर बहें, औषधियां मधुर उगें। रात मधुर हो प्रभात भी। पृथ्वी, द्यौ, वनस्पतियां, सूर्य और गौवें मधुर हों (यजुर्वेद, 13/27, 29)। हमें अंतरिक्ष अभय करे, द्यावा, पृथ्वी, नीचे-ऊपर, आगे-पीछे, मित्र-शत्रु, ज्ञात-अज्ञात, रात दिन और समस्त दिशाओं से अभय की प्राप्ति हो (अथर्ववेद, 19/15/5/6)।

पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों के महान् योगदान एवं भूमिका को स्वीकार करते हुए मुनियों ने बृहत् चिंतन किया है। मत्स्य पुराण में उनके महत्व एवं महात्म्य को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है-

दश कूप समा वापी, दशवापी समोहद्रः।

दशहृद समः पुत्रो, दशपुत्रो समो द्रुमः।

प्राकृतिक शक्तियों में देवी स्वरूप की अवधारणा मात्र यह इंगित करती है कि हम इनकी रक्षा करें, इनसे अनुराग रखें और स्वस्थ, संतुलित जीवनयापन करते हुए पर्यावरण की यथाशक्ति रक्षा करें। उक्त बिंदुओं को यदि नैतिकता-अनैतिकता की सीमा-रेखा में न भी बांधें तो भी ये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के संवाहक प्रतीत होते हैं। भारतीय चिंतन-धारा की यही प्रमुख विशेषता है, जो इस प्रदूषण-अभिषिक्त सदी में हमें अपने अतीत की बार-बार याद दिलाती है।[17]

संदर्भ

1. पृथ्वी (तैत्तिरीय संहिता, 2/1/2/3, निरुक्त, 1/4/5, ऋग्वेद सायण भाष्य, 5/85/1 और अमरकोश, रामाश्रमी : टीका, पृ. 141) के विस्तार के कारण पृथ्वी है।
2. गौः (निरुक्त 2/2/5) गति के कारण गौ है।
3. भूमि (रामाश्रमी टीका, अमरकोष पृ. 141) निवास योग्य होने के कारण भूमि है।
4. वसुंधरा (वही, पृ. 141) रत्न आदि धनों से युक्त होने के कारण। 5. मही (वही, पृ. 141) पूजनीय एवं इसमें प्राणियों के बड़े होने के कारण।
6. धरा (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।
7. धरणी (वही, पृ. 141) धारण करने के कारण।
8. अवनी (वही, पृ. 141) प्राणियों की रक्षा एवं पालन करने के कारण।
9. मेदिनी (वही, पृ. 141) समस्त प्राणियों से स्नेह होने के कारण।
10. स्थिरा (वही, पृ. 141) अपने स्थान पर स्थित रहने के कारण।
11. विश्वंभरा (वही, पृ. 141) सबका भरण-पोषण होने के कारण।
12. रसा (वही, पृ. 141) रस से परिपूर्ण होने के कारण।
13. क्षमा (वही, पृ. 141) क्षमाशील होने के कारण।
14. गोत्रा (वही, पृ. 142) सहनशील होने के कारण।
15. सर्वसहा (वही, पृ. 142) सब कुछ सहने के योग्य होने के कारण।
16. अचल (वही, पृ. 142) स्थित होने के कारण।
17. अनंता (वही, पृ. 142) अंतिम छोर न होने के कारण।